THE ECONOMIC TIMES

Date:20-12-23

Faith is Traditional, And Yet, It Moves

ET Editorials

Religions, like the British monarchy and club rules, are popular because they provide a structured, institutional sanctuary for traditions and conventions that don't get swayed by the latest fad in town. For the conservative, this is a comfort zone. For the more laissez-faire-minded, even religions are situated in the larger social context that does not remain static. On Monday, one of the largest international institutions, the Catholic Church, officially took a step that sent out a message that the deeply traditional is to be valued and, yet, to quote Galileo, 'it moves'. Pope Francis formally approved letting Catholic priests bless same-sex couples, making Catholicism more inclusive, even as it continues to ban gay marriage.

Reform is most effective when conducted from within the fold. Otherwise, it becomes, in most cases, preaching to the converted. The pope's latest document elaborates on a letter he had sent to two conservative cardinals in October where he had suggested expanding the remit and definition of a 'couple', till now confined to the 'man-woman' binary. Not every Catholic will be happy — it will be seen as being 'too much'. And not every liberal will be happy — it will be seen as being 'too little'. But such is the nature of the beast that is gradualism, the cornerstone of all living systems, of faith, worship and ideology included.

Religions are powerful influencers. Religious leaders, like popular ones in the secular arena, can set the agenda, script reforms, tilt the scales that 'outsiders' can only pontificate on. Reforms in, say, Hinduism, like abolition of sati and widow remarriage, were social adjustments that took place from within. At that time, they may have been seen as being scandalously 'woke' by many within the fold. Today, those 'traditions' are the ones considered to be scandalous. Catholicism sanctifying same-sex relationships, too, will one day be seen as part of Catholic tradition. Other faiths — not necessarily only religious ones — are free to get similar 'conservatively radical' ideas.

दैनिक भास्कर

Date:20-12-23

क्लाइमेट पर हुई बैठक कॉमेडी शो बन गई

अंशुमान तिवारी, (मनी-9 के एडिटर)

2009 में रोनाल्ड इमेरिच की एक फिल्म आई थी- '2012'। फिल्म में पर्यावरण की आपदाओं से दुनिया की तबाही की कल्पना की गई है। सरकारों को पता होता है कि यह प्रलय कब आएगा । वे अपने खास लोगों के लिए एक विशाल जहाज बनाते हैं, जिसमें प्रमुख जानवरों, फसलों, भवन निर्माण सामग्रियों, तकनीकों, बिजली बनाने वाले संयंत्रों आदि को जुटाया जाता है। प्रलय के वक्त यह विशाल जहाज दुनिया के खास नेताओं, अमीरों को बचाकर नई दुनिया बसाने की तरफ ले जाता है। यह प्रतीक बाइबल की प्रसिद्ध कहानी 'नोहाज आर्क' यानी नूह की नाव से प्रेरित था। इस कहानी में ईश्वर पृथ्वी पर मनुष्यों की दुष्टता से चिढ़कर प्रलय लाते हैं, इससे पहले नूह से वे एक नाव बनाकर नई सृष्टि के लिए जरूरी सामान जुटाने को कहते हैं।

दुबई में पर्यावरण पर जुटान यानी सीओपी - 28 में हुए तमाशे को देखकर लग रहा था कि जैसे दुनिया के नेताओं ने पूरी दुनिया बसाने के लिए कोई दूसरी पृथ्वी तलाश रखी है और वहां के लिए उड़ानें जल्द शुरू होने जा रही हैं। बीते तीन-चार साल से पूरी दुनिया जब पर्यावरण की आपदाओं से टूट और बिखर रही है तो सरकारों ने कार्बन उत्सर्जन लक्ष्यों पर सहमत होने के बजाय दुबई की बैठक को क्लाइमेट चेंज का कॉमेडी शो बना दिया।

सबसे पहले तो जिस यूएई ने यह मेला जुटाया, वह पर्यावरण को गरमाने वाली गैसों (ग्रीनहाउस गैस) के उत्सर्जन का चैम्पियन है। इस सम्मेलन की मेजबान अबूधाबी ऑइल कंपनी का दूषित गैस उत्सर्जन 2021 से 2022 के बीच 1.5 फीसदी से बढ़कर 7.5 फीसदी हो गया। यह तथ्य जब बैठक में पेश हुआ तो भड़ककर मेजबान यूएई के सुल्तान ने कार्बन उत्सर्जन के विज्ञान को ही गलत ठहरा दिया ! फिर भारत और चीन जैसे मुल्क- जो पर्यावरण की त्रासदी से त्राहि-त्राहि कर रहे हैं- उन्होंने कह दिया कि उन्हें तो कोयला पसंद है।

तय तो यह हुआ था कि : दुनिया के नेता दुबई में अपने भाषण देकर क्यों खिसक लिए? कार्बन घटाने पर कोई मजबूत सहमति क्यों नहीं बनी? वजह यह है कि दुनिया के रखवालों ने जानबूझकर दुनिया के भविष्य को तूफानों, चक्रवातों, सूखे, भूस्खलन के हवाले कर दिया है। कहते हैं जिंदा मक्खी कैसे निगली जाए? मगर सरकारों ने पूरा मगरमच्छ निगल लिया। इस सम्मेलन में एक रिपोर्ट आई, जो सरकारों की वादा खिलाफी का चिट्ठा है। यह रिपोर्ट दुनिया पर संकट की भविष्य पत्रिका है।

2015 में पेरिस में दुनिया के बीच इस पर सहमति बनी थी कि तापमान में बढ़ोतरी को औद्योगिक क्रांति से पहले के तापमान की तुलना में अधिकतम 1.5 फीसदी पर रोकने का लक्ष्य था । इसके लिए 2025 तक ग्रीन हाउस गैसों का

उत्सर्जन कम होना शुरू किया जाना था। 2030 तक इसे 43 फीसदी कम किया जाना है। पर्यावरण को गर्म करने वाले कार्बन डाइऑक्साइड का 90 फीसदी उत्सर्जन फॉसिल फ्यूल (जीवाश्म ईंधन) यानी कोयले, कच्चे तेल और गैस से होता है, इसलिए अंतत: पूरी रणनीति इन ईंधन की खपत कम करने पर केंद्रित हो गई है। 2021 में ग्लासगो में यह सहमति बनी थी कि पेरिस का 1.5 डिग्री वाला लक्ष्य हासिल करने के लिए 2050 तक उत्सर्जन को शून्य पर लाना होगा।

और हो क्या गया : इसी सम्मेलन में आई यूएन की प्रोडक्शन गैप रिपोर्ट ने बताया कि दुनिया की अधिकांश सरकारें 2030 तक इतना जीवाश्म ईंधन पैदा करने वाली हैं, जो 1.5 डिग्री तापमान के लक्ष्य को हासिल करने के लिए तय मात्रा का दोगुना है। सरकारें 2030 तक पर्यावरण की गर्मी को कम करने वाले लक्ष्य से 110 फीसदी ज्यादा जीवाश्म ईंधन का उत्पादन करेंगी। 2030 तक दुनिया में तय लक्ष्य से 460 फीसदी ज्यादा कोयला, 29 फीसदी ज्यादा तेल और 82 फीसदी ज्यादा गैस का उत्पादन होगा। जबकि ग्लोबल वार्मिंग रोकने के लक्ष्य के तहत 2040 तक कोयले का इस्तेमाल पूरी तरह बंद किया जाना है और 2050 तक तेल व गैस का उत्पादन तीन चौथाई (2020 के स्तर से) घटाया जाना है। इसके बाद तो 2050 तक नेट जीरो यानी शून्य कार्बन उत्सर्जन का लक्ष्य मिलने की कोई उम्मीद नहीं है।

इस रिपोर्ट ने यह भी बताया कि पेरिस और ग्लासगो में जो पर्यावरण सुरक्षा के सबसे बड़े पैरोकार थे, उन्होंने वादा खिलाफी का कीर्तिमान बनाया है। दुनिया के 10 अमीर देश ने तीनों प्रमुख जीवाश्म ईंधन के मामले में तय लक्ष्यों का पालन नहीं किया है। दूसरी तरफ कोयला, गैस और तेल उत्पादन करने वाले 20 प्रमुख देशों में करीब 17 ने इनके उत्पादन को बढ़ाने के लिए नए निवेश किए हैं और योजनाएं बनाई हैं। केवल 17 देश हैं, जिनके यहां जीवाश्म ईंधन को कम करने पर कुछ प्रगति दिखती है। इनके अलावा सभी देशों का हाल एक जैसा है। भारत भले ही पर्यावरण की आपदाओं का शिकार हो, दिल्ली का दम घुट रहा हो, मगर सरकार ने नए इलेक्ट्रिसिटी प्लान में कोयले की बिजली पर निर्भरता बढ़ाने का ऐलान कर दिया है। यूएन रिपोर्ट बताती है भारत ने जीवाश्म ईंधन को बढ़ाने के लिए 2021 में करीब 5.7 अरब डॉलर की सब्सिडी और टैक्स रियायतें दी हैं।

अब आपको समझ में आया कि पर्यावरण को तबाह करने वाले हमाम में सब निर्वस्त्र हैं। यही वजह थी कि दुबई से आया दस्तावेज इतना खोखला था। नेट जीरो तो दूर, अब क्लीन एनर्जी ऊर्जा की ओर जाना और कठिन हो गया है। क्योंकि जिन्हें ऐसा करना है, उन्होंने तो कोयला - तेल-गैस में बड़ा निवेश कर रखा है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:20-12-23

नए जमाने का कानून

संपादकीय

एक सदी से भी अधिक पुराने हो चुके टेलीग्राफ कानून की जगह लोकसभा में दूरसंचार विधेयक 2023 का प्रस्तुत किया जाना इस क्षेत्र के लिए एक स्वागत योग्य घटना है। यह क्षेत्र वित्तीय संकट और दो कंपनियों का दबदबा होने की आशंका

से जूझ रहा है और ऐसे में माना जा रहा है कि प्रस्तावित नया विधेयक इसे राहत प्रदान करेगा। केंद्र सरकार ने इस विधेयक के जरिये सुधारों की एक श्रृंखला शुरू की है। विधेयक में सबसे बड़ा परिवर्तन सभी दूरसंचार प्लेटफॉर्म के लिए स्पेक्ट्रम की नीलामी के सार्वभौमिक नियम के बजाय आवश्यक होने पर सैटेलाइट ब्रॉडबैंड सेवाओं के मामले में प्रशासित मूल्य निर्धारण पर स्पेक्ट्रम के आवंटन के लिए स्थान बनाना है। सर्वोच्च न्यायालय ने 2012 में निर्णय दिया था कि प्राकृतिक सार्वजनिक संसाधनों मसलन स्पेक्ट्रम के वितरण के लिए प्रतिस्पर्धी नीलामी की प्रक्रिया अपनानी चाहिए। तब से स्पेक्ट्रम का आवंटन केवल बोली प्रक्रिया के जरिये हुआ है। बिल पेश करने के साथ ही सरकार ने शीर्ष अदालत से यह स्पष्टीकरण भी चाहा है कि क्या वह उन मामलों में हवाई तरंगों को प्रशासित कीमत पर आवंटित कर सकती है, जहां प्रतिस्पर्धी बोली लगाना व्यावहारिक न हो। माना जा रहा है कि अदालत का जवाब इस मसले को हल कर देगा।

प्रस्तुत विधेयक का उद्देश्य इंडियन टेलीग्राफ अधिनियम 1885, द इंडियन वायरलेस टेलीग्राफी ऐक्ट 1933 और टेलीग्राफ वायर्स (गैरकानूनी कब्जा) अधिनियम 1950 को प्रतिस्थापित करने वाला है और इससे दूरसंचार क्षेत्र को मदद मिलनी चाहिए, क्योंकि इसमें भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण यानी ट्राई की शक्तियों को अक्षुण्ण रखा गया है। ट्राई के चेयरमैन के मामले में विधेयक समुचित अनुभव वाले निजी क्षेत्र के व्यक्ति के पक्ष में है। इससे इस क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा की दृष्टि से खुलापन आएगा। स्पेक्ट्रम के मामले में सुधार सामने आएंगे और एक बार कानून पारित हो जाने के बाद दूरसंचार कंपनियों का काम आसान हो जाएगा। यह सुखद है कि विधेयक सभी अंशधारकों के मसलों पर ध्यान देता है- उपभोक्ताओं को परेशान करने वाली कॉल करने वालों के खिलाफ सख्त नियमन से लाभ होगा, अगर प्रस्तावित ऑनलाइन विवाद निस्तारण प्रणाली प्रभावी ढंग से काम करती है तो उद्योग जगत, राज्य सरकारों और केंद्र सरकार को भी कुछ राहत मिलेगी। इसके अलावा दूरसंचार और टावर कंपनियों को अधोसंरचना में समर्थन मिल सकता है क्योंकि विधेयक किसी दूरसंचार नेटवर्क को क्षति पहुंचाने या किसी सेवा को बाधित करने वालों के खिलाफ कड़े कदम की बात कहता है।

व्हाट्सऐप, स्काईप और अन्य ओवर द टॉप (ओटीटी) सेवाओं को राहत के रूप में उन्हें दूरसंचार नियमन से बाहर रखा गया है। यह स्पष्ट किया गया है कि ओटीटी का नियमन इलेक्ट्रॉनिकी एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय द्वारा किया जाएगा। इससे इस क्षेत्र से जुड़ी अब तक की अस्पष्टता समाप्त हो जाएगी। बहरहाल, यह प्रावधान सरकार के हाथ का खिलौना नहीं बनना चाहिए, जिसमें कहा गया है कि आपात स्थिति में सरकार किसी भी दूरसंचार सेवा या नेटवर्क का अधिग्रहण कर सकेगी। इसका इस्तेमाल मुक्त बाजार का दमन करने या लोकतंत्र के दमन में नहीं होना चाहिए। निजता के नियम तथा किन परिस्थितियों में सरकार सेवाओं को अपने हाथ में ले सकती है, इसे पर्याप्त जांच और संतुलन के साथ स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाना चाहिए। निकट भविष्य में उनको लाभ हो सकता है, जो अपनी ब्रॉडबैंड सैटेलाइट सेवा शुरू करना चाहते हैं, क्योंकि विधेयक में वैश्विक व्यवहार का पालन करते हुए इस क्षेत्र में स्पेक्ट्रम का आवंटन प्रशासित मूल्य पर करने की इजाजत दी गई है। इन बातों के बीच इस कानून को लेकर एक दीर्घकालिक नजरिया जरूरी है। वर्षों तक मसौदा तैयार करने और उसे दोबारा तैयार करने के बाद दूरसंचार क्षेत्र में पहला व्यापक सुधार वास्तव में उस उद्योग के लिए स्वागत योग्य है जो भारत के लिए बहुत सारी उम्मीदों से भरा है।

जनसत्ता

Date:20-12-23

सुरक्षा का संचार

संपादकीय

दूरसंचार सेवा के क्षेत्र में जिस तेजी से अभूतपूर्व वृद्धि हुई है, उसी तेजी से इसके दुरुपयोग के खतरे भी बढ़े हैं। सरकार डिजिटल अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करने की कोशिश कर रही है, मगर इसमें व्यक्तिगत डेटा की चोरी, बैंक खातों में सेंधमारी, लोगों की निजता में खलल आदि की प्रवृत्ति बहुत तेजी से बढ़ी है। इस पर नकेल कसने के लिए संचार विभाग चौकसी के इंतजाम कर रहा है। बैंकों और दूरसंचार कंपनियों को भी अधिक जवाबदेह बनाया जा रहा है। मगर इंटरनेट के माध्यम से सूचनाएं भेजने, संवाद करने आदि के मामले में निजता का हनन रोकना जटिल ही बना हुआ है। ऐसे में सरकार ने एक सौ अड़तीस साल पुराने भारतीय टेलीग्राफ अधिनयम में बदलाव कर व्यावहारिक दूरसंचार विधेयक लाने का मन बनाया है। इससे संबंधित प्रस्ताव लोकसभा में पेश किया जा चुका है। इस अधिनियम में भारी जुर्माने और कारावास के कड़े प्रावधान होंगे। यहां तक कि राष्ट्रीय सुरक्षा के मद्देनजर सरकार दूरसंचार सेवाओं को अस्थायी रूप से अपने नियंत्रण में ले सकती है। हालांकि इस अधिनियम में संचार कंपनियों को उपग्रह सेवाओं, लाइसेंस लेने या छोड़ने से संबंधित नियमों को काफी लचीला करने का भी प्रस्ताव है, ताकि दूरसंचार के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा बढ़े और उपभोक्ता को इसका लाभ मिल सके।

दरअसल, प्रस्तावित कानून की जरूरत राष्ट्रीय सुरक्षा के मद्देनजर अधिक महसूस की जा रही है। आज दूरसंचार सेवाएं जिस उन्नत अवस्था में पहुंच गई हैं और उनमें निरंतर विकास हो रहा है, उसमें भारतीय टेलीग्राफ अधिनियम 1885 के प्रावधान बहुत कारगर साबित नहीं हो पाते। इस क्षेत्र में समय-समय पर आने वाली शिकायतों, मनमानियों और गड़बड़ियों के मद्देनजर सरकार अलग-अलग नियम-कायदे बना कर नियमित करने का प्रयास करती रही है। मगर कई मामलों में देखा जा चुका है कि दूसरे देशों में बैठे अपराधी दूरसंचार सेवाओं की मदद से राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरा पैदा करने की कोशिश करते हैं। कुछ मामलों में जासूसी करने, लोगों की निजी जिंदगी में घुसपैठ करने, दूसरों की बातचीत सुनने और रिकार्ड करने की आशंका संबंधी शिकायतें भी मिलती रही हैं। ऐसे लोगों के खिलाफ न केवल कड़े दंड, बल्कि उन्हें संचार सेवाओं से बाहर करने का भी प्रावधान किया गया है। संचार सेवाओं का उपयोग लोग संचार संबंधी अपनी सुविधाओं के लिए करते हैं, उनमें किसी तरह की खलल या असुरक्षा उनके नागरिक अधिकारों का हनन है। इस दृष्टि से कड़े कानूनी प्रावधान जरूरी हैं।

मगर इस विधेयक के कुछ प्रावधानों को लेकर विपक्षी दलों को आपत्ति है। हालांकि सरकार इस पर बहस को तैयार है, पर जिस तरह हंगामे के बीच यह विधेयक पेश किया गया, उस तरह के वातावरण में बहस कराने का प्रयास नहीं होना चाहिए, क्योंकि यह राष्ट्रीय सुरक्षा की संवेदनशीलता से जुड़ा मुद्दा है। कुछ दूरसंचार कंपनियां भी सख्त नियमों के पक्ष में हैं, पर राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर अगर उनकी सेवाओं पर नियंत्रण का अधिकार सरकार अपने हाथ में ले लेती है, तो उससे नागरिक हितों के बाधित होने की आशंका बनी रहेगी। पहले ही विपक्ष कुछ लोगों के फोनों में चोरी-छिपे साफ्टवेयर डाल कर जासूसी करने के आरोप लगाता रहा है। इससे संबंधित मामला सर्वोच्च न्यायालय में लंबित है। सोशल मीडिया

मंचों को अनुशासित करने संबंधी कुछ नियमों को लेकर भी अभिव्यक्ति आजादी और निजता की सुरक्षा आदि के तहत सरकार को सवालों के घेरे में खड़ा होना पड़ा था। इस तरह दूरसंचार सेवाओं को अपने नियंत्रण में लेने संबंधी उसके प्रस्तावित प्रावधान पर सर्वसम्मति मुश्किल लगती है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:20-12-23

महिला सुरक्षा से भी देश की समृद्धि

अर्चना दत्ता, (पूर्व महानिदेशक, दूरदर्शन और आकाशवाणी)

पिछले साल भारत में महिलाओं के खिलाफ आपराधिक मामले 2021 की तुलना में चार फीसदी बढ़ गए। इनमें से ज्यादातर मामले (31.4 प्रतिशत) पति या उसके रिश्तेदारों द्वारा की गई क्रूरता के हैं। यही नहीं, दिल्ली अब भी महिलाओं के लिए सबसे असुरक्षित शहर है, जहां प्रतिदिन बलात्कार के औसतन तीन मामले दर्ज होते हैं। गौर कीजिए, यह देश के 19 प्रमुख शहरों में महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराध का 29 फीसदी है। ये तमाम आंकड़े हाल ही में जारी राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) की रिपोर्ट से उजागर हुए हैं।

यह रिपोर्ट बताती है कि बड़ी संख्या में महिलाएं आज भी हिंसा की शिकार हो रही हैं। एक अन्य हालिया अध्ययन में, जिसमें हरियाणा में 2015 से 2018 के बीच दर्ज की गई करीब चार लाख उन एफआईआर का विश्लेषण किया गया है, जिनमें महिलाओं ने विभिन्न अपराधों की शिकायत की थी, यह भी स्पष्ट हुआ है कि हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में विभिन्न स्तरों पर भेदभाव किया जाता है। इस पर टिप्पणी करते हुए एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी ने कहा, जांच और सुनवाई के दौरान महिला फरियादियों के खिलाफ अमूमन अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता, पुलिस उनको गंभीरता से नहीं लेती और कभी-कभी तो अदालती कार्यवाही में भी लापरवाही बरती जाती है। साल 2010 के एक मामले में देश की शीर्ष अदालत ने कहा भी था कि अपने खिलाफ हमले और हिंसा के ज्यादातर मामले महिलाएं आवेश में मामूली शिकायतों पर दर्ज कराती हैं।

गौर कीजिए, एनसीआरबी की रिपोर्ट में दर्ज मामलों का ही जिक्र किया जाता है, वास्तविक संख्या का नहीं, जिसके कारण उन मामलों की आशंका बनी रहती है, जो किसी न किसी कारणवश दर्ज नहीं हो पाते। भारत में अंतरंग-साथी के साथ हिंसा काफी आम बात है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण, 2019-21 के अनुसार, करीब 31.5 फीसदी महिलाएं 15 साल की उम्र के बाद कम से कम एक बार शारीरिक या यौन हिंसा का सामना करती हैं। कई महिलाओं के लिए रिपोर्ट दर्ज कराना मुश्किल होता है या फिर सामाजिक प्रतिशोध, कलंक, पुलिस स्टेशनों में अनुचित व्यवहार और यातनापूर्ण न्यायिक प्रणाली के डर से रिपोर्ट न कराने का दबाव उन पर डाला जाता है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण

के आंकड़ों के मुताबिक, महज 5.2 प्रतिशत पीड़िता शारीरिक या यौन हिंसा के मामलों में पुलिस से मदद मांगती हैं। यहां तक कि तमिलनाडु और कर्नाटक जैसे उच्च साक्षरता दर वाले सूबों में भी महिला-अपराधों का दर्ज करने की दर कम है, जिससे पता चलता है कि इसका साक्षरता से कोई रिश्ता नहीं है। विश्व स्तर पर भी हिंसा के खिलाफ पुलिस से मदद मांगने वाली महिलाओं का प्रतिशत 10 से कम है।

'निर्भया' मामले के बाद कानूनी स्तर पर कई तरह के बदलाव किए गए, पर समाधान के रूप में उनका प्रभाव बहुत सीमित रहा है। कई कानूनी विशेषज्ञों का मानना है कि क्रियान्वयन प्रक्रिया में सुधार आवश्यक है, और उन्होंने इसे पारदर्शी बनाने की वकालत की है। इसके लिए इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्यों का उपयोग करने, जांच-प्रक्रिया की वीडियोग्राफी कराने, समय पर आरोप-पत्र दाखिल करने और पीड़िताओं में विश्वास बढ़ाने के उपाय करने का सुझाव दिया है। जैसा कि एक हालिया शोध अध्ययन में कहा गया है, पीड़िता को अधिक सहानुभूति और संवेदनशीलता की जरूरत है, क्योंकि लंबे समय तक चलने वाले अदालती मामलों में वे रोजाना अपमानित होती हैं... इससे उनमें यह बात पैठ जाती है कि तंत्र आरोपी के अनुकूल है।

साल 2022 के अंत में, देश की विभिन्न अदालतों में करीब पांच करोड़ मामले लंबित थे। एक कानूनी विशेषज्ञ ने यह भी अफसोस जताया कि कई मामलों में जांच और मुकदमे के दौरान गवाह मुकर जाते हैं... और पीड़िता को अदालत के बाहर समझौता करने के लिए मजबूर किया जाता है। इस कारण अपने देश में अपराधी की सजा की दर काफी कम है। 2021 में दोष साबित होने की दर सिर्फ 26.5 फीसदी थी, जबकि साल 2020 की यह 29.8 फीसदी थी। वर्ष 1993 में, संयुक्त राष्ट्र ने महिलाओं के खिलाफ हिंसा को खत्म करने के अपने घोषणापत्र में बताया था कि ऐसे अपराध उन समाजों में होते हैं, जो जेंडर के लिहाज से पारंपरिक रूप से असंतुलित हैं। ड्रग्स और अपराध पर संयुक्त राष्ट्र कार्यालय के अनुसार, ऐतिहासिक रूप से पुरुषों द्वारा पुरुषों के लिए तैयार की गई आपराधिक न्याय प्रणाली में महिलाओं को प्रतिनिधित्व तो बहुत कम दिया जाता है,पर बतौर पीड़ित उनकी सहभागिता काफी ज्यादा होती है।

विश्व स्तर पर करीब 30 फीसदी महिलाओं ने माना है कि वे जीवन में अंतरंग साथी या गैर-साथी द्वारा कम से कम एक बार शारीरिक या यौन हिंसा का शिकार हुई हैं। पुलिस बल में महिलाओं की हिस्सेदारी 35 प्रतिशत से कम है, जबकि न्यायपालिका में उनकी सहभागिता 70.9 प्रतिशत (फ्रांस) से लेकर 3.8 फीसदी (नेपाल) तक है। भारत में पुलिस बल में महिलाओं की हिस्सेदारी 12 फीसदी है, जबकि 28 फीसदी निचली अदालतों में, 12 फीसदी उच्च न्यायालयों में व 9.6 प्रतिशत जेल-प्रशासन में (सभी स्तरों पर) है।

विश्व के 162 देशों में घरेलू हिंसा व 147 मुल्कों में कार्यस्थल पर यौन-उत्पीड़न के खिलाफ कानून पारित होने के बावजूद महिलाओं व लड़कियों से जुड़े अपराध खुद उन पर और समाज व अर्थव्यवस्था में उनकी भागीदारी पर नकारात्मक असर डाल रहे हैं। इसके कारण हर वर्ष विश्व को 1.5 ट्रिलियन डॉलर (2022 में विश्व बैंक के अनुमान के अनुसार) और कई देशों को अपनी जीडीपी का 1.2 से 3.7 फीसदी तक आर्थिक नुकसान होता है। अध्ययनों से पता चलता है कि भारत में अंतरंग-साथी की एक हिंसक घटना से औरत औसतन पांच दिन काम पर नहीं जा पाती है। चूंकि भारत तेजी से आर्थिक विस्तार कर रहा है, इसलिए श्रम बाजार में स्त्रियों की भागीदारी और उनमें कौशल विकास को बढ़ावा देना काफी महत्वपूर्ण है।

जाहिर है, महज कानून बनाना काफी नहीं, ईमानदारी से उनका पालन भी जरूरी है। बचपन से ही लैंगिक संवेदनशीलता को बढ़ावा देने से लैंगिक असमानता, रूढ़िवादिता और जेंडर आधारित हिंसा खत्म करने में मदद मिल सकती है, जिससे कार्यस्थल, सार्वजनिक जगह और घर कहीं अधिक सुरक्षित बन सकेंगे।